RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2024

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 | अंक - 3 | जून-जुलाई-अगस्त-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

आर्य समाज के सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र का द्विवेदी काव्य पर प्रभाव

आराधना माहेश्वरी

सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

द्विवेदी युग के कवियों पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव पड़ा। आर्यसमाज ने समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वासों और दुरंगी सामाजिक नीति का जोरदार विरोध किया और समाज-सुधार की एक सशक्त लहर उत्पन्न की। इसी जागरण की धारा ने उस समय के कवियों को भी प्रभावित किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक दोषों—जाति-पांति, छुआछूत, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, स्त्री-शिक्षा, स्त्री-पुरुष समानता आदि—का यथार्थ चित्रण किया।

कवियों ने आर्यसमाज के सुधारवादी आदर्शों को आधार बनाकर जनता में चेतना जगाई और साहित्य को समाज-सुधार का सशक्त माध्यम बनाया। इस प्रकार द्विवेदी-युगीन काव्य में नैतिकता, समाज-सुधार, सत्य, समानता और मानवोद्धार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिसका मूल प्रेरणास्रोत आर्य समाज की विचारधारा थी।

वर्ण-व्यवस्था :

द्विवेदी-युगीन कवियों ने आर्यसमाज के प्रभाव से वर्ण-व्यवस्था की उस मूल भावना को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, जिसमें जन्म नहीं, बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव ही मनुष्य के वर्ण का आधार माने गए थे। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में वर्णों को समाज के अंग रूप में प्रस्तुत किया गया था, परंतु कालांतर में सामाजिक अव्यवस्था फैलने से जन्माधारित श्रेष्ठता का मिथक पनपा और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी में गुणहीन और कर्त्तव्यहीन वर्ग उभर आए। आर्यसमाज ने इस विकृति का विरोध करते हुए समाज में वर्ण-धर्म को कर्मप्रधान स्वरूप में पुनर्स्थापित करने का संदेश दिया।

यही सुधारवादी विचारधारा द्विवेदी-युगीन कविता में स्पष्ट दिखाई देती है। गुप्तजी जैसे सनातनधर्मी कवि ने भी वर्णों की गुणहीनता और कर्तव्यच्युतता पर कठोर प्रहार किया तथा सभी वर्णों को अपने-अपने धर्म का आचरण करने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि नाम मात्र से कोई आर्य नहीं बन जाता, बल्कि उसके कर्म ही उसे आर्यत्व प्रदान करते हैं। इसी भावना को 'भारत-भारती' तथा अन्य काव्यों में बार-बार व्यक्त किया गया।

'साकेत' में वर्णाश्रम-व्यवस्था के मूल स्वरूप को स्थान मिला है जिसमें जड़ता के लिए कोई अवकाश नहीं। 'मंगलघट' की 'चण्डाल' जैसी रचनाओं में गुण और आचरण के आधार पर वर्ण-स्वरूप का उलट जाना यह संदेश देता है कि शूद्र यदि पुण्य-प्रताप और श्रेष्ठ कर्म करता है तो वह श्वपच नहीं, अपितु पूज्य

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

बनने का अधिकारी है। आगे 'आर्यसमाज का अभ्युदय', 'दयानन्दोदय' तथा 'तपोबल' जैसी कृतियों में भी वर्ण-व्यवस्था को गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर स्थापित करने की स्पष्ट प्रेरणा मिलती है।

जाति-पाँति :

द्विवेदी-युगीन काव्य में जाति-पाँति के विरुद्ध उठी आवाज़ स्पष्ट रूप से आर्यसमाज की वैदिक, समानतावादी विचारधारा से प्रेरित दिखाई देती है। जब जन्माधारित जाति-व्यवस्था समाज को विभाजित कर रही थी, तब आर्यसमाज ने वैदिक सिद्धांतों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य का मूल्य उसके गुण, कर्म और स्वभाव से होता है, जन्म से नहीं। इसी भावना को कवियों ने अपनी रचनाओं में दृढ़ता से व्यक्त किया।

हरिऔध ने नीच-वर्ण के हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार और उनके उत्थान को सम्पूर्ण हिन्दू समाज का कर्तव्य मानकर जातिगत घृणा पर प्रहार किया। उनके अनुसार वास्तविक कुलीनता वंश में नहीं, बल्कि सत्य, दया, क्षमा, उदारता और सज्जनता जैसे शुभ गुणों में निहित है। उन्होंने कुलीनता को सामाजिक विघटन और अवनति का कारण तक कहा।

विवाह सम्बन्धी संकीर्ण जाति-नियम उस युग की सबसे बड़ी सामाजिक बाधा थे। आर्यसमाज ने इन्हें तोड़ने के लिए तीव्र आन्दोलन चलाया क्योंकि संकीर्णता के कारण दहेज की समस्या, अनमेल-विवाह, अविवाहित रह जाने जैसी अनेक हानियाँ उत्पन्न हो रही थीं। द्विवेदी-युगीन कवियों ने भी जाति-पाँति के इस बंधन को सामाजिक पतन का कारण माना और समानता व कर्तव्यपालन पर आधारित सामाजिक संरचना का समर्थन किया।

शंकर की कविताओं—'पंच-पुकार', 'एरण्ड-वन-विडाल-व्याघ्र'—में यह विचार मिलता है कि वेद गुण-कर्म पर आधारित जाति को मानता है, अतः जन्म से उत्पन्न जाति-भेद एक कल्पित और निरर्थक अवधारणा है। लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय तथा अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं में जाति-पाँति को सामाजिक विनाश का कारण बताते हुए विश्व-बन्धुत्व की भावना को मानव-जीवन का वास्तविक लक्ष्य माना। यह वैचारिक धारा मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' तथा अन्य रचनाओं में भी दृष्टिगोचर होती है, जहाँ शूद्रों को भी ब्रह्म के ही अंग का उद्गम मानकर सम्माननीय बताया गया।

छुआछूत :

द्विवेदी-युगीन साहित्य में छुआछूत के विरुद्ध उठी आवाज़ आर्यसमाज तथा आधुनिक मानवतावादी विचारधारा से प्रेरित थी। अस्पृश्यता ने हिन्दू समाज को भीतर से खोखला कर दिया था—मनुष्य-मनुष्य से घृणा करने लगा, शूद्रों को देवालयों से दूर रखा गया और समाज संगठन बिखरने लगा। ईश्वर एक, आत्मा एक और मानवता एक होने के वैदिक सिद्धांत के विपरीत यह भेदभाव गहरी सामाजिक त्रुटि थी।

आर्यसमाज और गांधीजी के प्रयासों से अस्पृश्यता-निवारण का जो आंदोलन चला, उसकी प्रतिध्वनि द्विवेदी-युग के कवियों में भी स्पष्ट सुनाई देती है। कवियों ने अछूतों को समाज की मुख्यधारा में लाने, मानव-मात्र को समान समझने और विश्व-बन्धुत्व को अपनाने का संदेश दिया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में राम और गुह के आलिंगन द्वारा ऊँच-नीच के भेद को संवेदनात्मक रूप से मिटाया।

आर्यसमाजी कवि शंकर शर्मा ने अपनी अनेक रचनाओं में छुआछूत को भारत के विघटन का कारण

बताते हुए एकेश्वरवादी दृष्टि से मानव-समता का प्रचार किया। रूपनारायण पाण्डेय ने अछूतों को अपनाए बिना राष्ट्र और समाज की उन्नति को असम्भव बताया। रामचन्द्र शुक्ल, हरिऔध, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि कवियों ने भी छूआछूत को अमानवीय मानकर उसका तीखा विरोध किया और अपने साहित्य के माध्यम से समाज को आत्म-सुधार की प्रेरणा दी।

शुद्धि :

द्विवेदी-युग में आर्यसमाज द्वारा चलाया गया शुद्धि-आन्दोलन धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अत्यन्त प्रभावी पक्ष था। हिन्दू समाज की कमजोरी और विघटन का लाभ उठाकर जहाँ मुसलमान और ईसाई धर्मावलम्बी अपनी संख्या बढ़ा रहे थे, वहीं आर्यसमाज ने दृढ़ संकल्प के साथ उन लोगों को पुन: हिन्दू धर्म में लौटाने का प्रयास किया, जो किसी कारणवश भिन्न मतों की ओर मुड़ गये थे। यह केवल धर्मांतरण की प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि अपने समाज में आत्मविश्वास, स्वाभिमान और सांस्कृतिक गौरव को पुनर्जीवित करने का उपक्रम था।

द्विवेदी-युगीन कवियों ने इस शुद्धि-चेतना को अपने साहित्य में भी स्थान दिया। मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'साकेत' में राम के माध्यम से आर्यत्व-प्रदान की भावना का उल्लेख कर शुद्धि-आन्दोलन की ओर संकेत किया। त्रिलोचन तथा सक्सेना जैसे विद्वानों ने इसे हिन्दू संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रतीक माना। आर्यसमाजी कवि 'शंकर' ने अनेक रचनाओं में गुण-कर्म पर आधारित शुद्धि को धर्मप्रचारकों की मान्यता बताते हुए समाज में व्याप्त छूत-छात, खान-पान के भेद तथा कुप्रथाओं से मुक्ति का मार्ग बताया।

आर्यसमाजियों ने अपने भजनों में शुद्धि को राष्ट्रीय आवश्यकता घोषित किया—भटके हुए लोगों को लौटने का आह्वान किया और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करते हुए समस्त मानवता को आर्यत्व के प्रकाश से आलोकित करने की कामना की। 'मुसाफिर' की गजल जैसी रचनाओं में इस आन्दोलन की अदम्य उत्सुकता, संघर्षशीलता और आत्मविश्वास भी झलकता है।

आश्रम व्यवस्था :

आश्रम-व्यवस्था भारतीय जीवन-दर्शन की वह सुव्यवस्थित योजना है जिसमें मनुष्य के संपूर्ण जीवन को चार क्रमिक सोपानों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—के माध्यम से संयमित, अनुशासित और उद्देश्यपूर्ण बनाया गया। ब्रह्मचर्य में चरित्र-निर्माण और शिक्षा, गृहस्थ में सामाजिक उत्तरदायित्व, वानप्रस्थ में आत्मचिंतन तथा संन्यास में सर्वजन हितैषी दृष्टि—इन सभी ने जीवन को संतुलित और सार्थक बनाया।

किंकर्तव्यविमूढ़ समाज में जब संन्यास-प्रधानता बढ़ने लगी थी, तब स्वामी दयानन्द ने इहलौकिक जीवन, कर्म और गार्हस्थ्य की श्रेष्ठता पर बल देकर नवजीवन का संचार किया। इससे गृहस्थ जीवन को आध्यात्मिक प्रतिष्ठा मिली, नारी-सम्मान बढ़ा और समाज जीवन में नवीन शक्ति का उदय हुआ।

द्विवेदी-युगीन कवियों ने भी आश्रम-व्यवस्था के महत्व को स्वीकारते हुए इसे राष्ट्रीय पुनर्जागरण की आधारशिला माना। उनके अनुसार ब्रह्मचर्य के लोप से भारतीयों में शक्ति-ह्रास हुआ और चारों आश्रमों के अनुशासित पालन से ही पूर्वजों ने सभ्य, संतुलित और उच्च जीवन का आदर्श स्थापित किया था। अत: आश्रम-व्यवस्था केवल व्यक्तिगत आचरण की रूपरेखा नहीं, बल्कि निष्काम कर्म, त्याग, संयम और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना पर आधारित एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था है, जो व्यक्ति और समाज—दोनों को ऊर्ध्वगामी

बनाती है।

स्त्री-सम्मान :

द्विवेदी-युगीन काव्यधारा में 'नारी-सम्मान' एक शक्तिशाली और पुनरुत्थानकारी विचार के रूप में उभरकर सामने आया। मध्यकालीन अवनति के बाद जिस समय नारी का स्थान उपेक्षित हो गया था, उसी समय बुद्धिवाद, सामाजिक चेतना और आर्यसमाज जैसे आंदोलनों ने यह मान्यता स्थापित की कि नारी निन्दा की नहीं, 'पूजा की अधिकारिणी' है।

स्वामी दयानन्द के कार्यों से गार्हस्थ्य की प्रतिष्ठा बढ़ी और उसके साथ ही नारी की मर्यादा भी ऊँची हुई। आर्यसमाज ने भजनों, उत्सवों और सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से नारी-उत्थान का सशक्त संदेश दिया, जिससे लोगों के दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन आया।

द्विवेदी मंडल के कवियों ने नारी-उपेक्षा पर सबसे अधिक संवेदना व्यक्त की। मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला, साकेत और भारत-भारती के माध्यम से नारी की दयनीय दशा, उसके त्याग, संयम और गरिमा को हृदयस्पर्शी रूप में सामने रखा। आचार्य द्विवेदी, श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय आदि कवियों ने भी नारी को पवित्रता, त्याग, मातृत्व, शक्ति और प्रेरणा का स्रोत माना और उसे भारतीय संस्कृति का जीवंत प्रतीक बताया। इस युग के काव्य में नारी को केवल परिवार की शोभा नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की कल्याणशक्ति माना गया। उसकी भूमिका जननी, संगिनी, प्रेरणादायिनी और लोकसेविका के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

स्त्री-पुरुष समानता :

द्विवेदी-युग के साहित्य में स्त्री-पुरुष समानता का विचार अत्यंत प्रबल रूप से उभरकर सामने आया। आर्यसमाज के सुधारवादी आंदोलन, बुद्धिवादी चेतना, राष्ट्रीय जागरण और नारी-उत्थान के प्रयासों ने यह भावना दृढ़ की कि नारी और पुरुष दोनों सामाजिक, नैतिक और राष्ट्रीय जीवन के समान रूप से सहभागी हैं।

इस युग के कवियों ने मध्यकालीन संकीर्णता और 'नारी हीन है' जैसी मान्यताओं का तीव्र विरोध किया। आचार्य द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध और अन्य कवियों ने नारी को अर्धांगिनी, सहधर्मिणी और पुरुष के कार्यों में समान भागीदारी निभाने वाली शक्ति के रूप में चित्रित किया। गुप्तजी ने सीता के मुख से पुरुष-कार्य की अपूर्णता को नारी-सहयोग के बिना स्पष्ट कराया—जिससे यह स्थापित हुआ कि नारी पुरुष की पूरक है, प्रतियोगी नहीं।

इस काव्यधारा में नारी को केवल करुणा की पात्रा नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की प्रेरक शक्ति माना गया। 'प्रियप्रवास' और 'पथिक' की नायिकाएँ राष्ट्रीय उत्थान और समाज-सुधार के कार्यों में पुरुषों के समान योगदान करने वाली उन्नत चेतना की प्रतीक हैं।

स्त्री-शिक्षा :

द्विवेदी-युग में स्त्री-शिक्षा एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक और साहित्यिक विषय था। आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन ने इस दिशा में सबसे अधिक प्रभाव डाला। पहले जहाँ स्त्रियों को पढ़ाना अनुचित माना जाता था, वहीं शिक्षा के प्रसार और तर्कबुद्धि के उदय के साथ यह स्पष्ट हो गया कि नारी की पतनावस्था

का मूल कारण अशिक्षा है।

महर्षि दयानन्द ने शास्त्रीय भ्रमों का खंडन कर स्त्री-शिक्षा का सशक्त समर्थन किया। उन्होंने बताया कि नारी पुरुष की सहधर्मिणी और जीवनसंगिनी है; अत: यदि वह अशिक्षित रहेगी तो गृहस्थी और समाज दोनों अपूर्ण रहेंगे। इसी दृष्टि ने युग में स्त्री-शिक्षा के महत्व को स्वीकृति दिलाई।

द्विवेदी-युगीन साहित्य में अनेक कवियों ने नारी-अशिक्षा पर तीखा प्रहार किया। आचार्य द्विवेदी ने 'महिला-रिषद के गीत' और 'कान्यकुब्ज-अबला-विलाप' में यह बताते हुए लज्जा व्यक्त की कि जहाँ वेदाध्ययन तक स्त्रियाँ करती थीं, वहीं अब वे अज्ञान में डूबी हुई हैं। रामचरित उपाध्याय, पार्वती देवी, मैथिलीशरण गुप्त, शंकर शर्मा, गोपालशरण सिंह आदि कवियों ने स्त्री-शिक्षा को देशोद्धार का अनिवार्य साधन बताया। गुप्तजी के अनुसार अर्धांगिनी के अशिक्षित रहने से दाम्पत्य जीवन भी अधूरा रह जाता है, और शिक्षित नारी समाज व राष्ट्र दोनों के लिए महान योगदान दे सकती है, जैसा कि इतिहास की अनेक वीरांगनाओं ने सिद्ध किया है।

इस युग की कविताओं में स्त्री-शिक्षा के प्रति सहानुभूति, करुणा, प्रेरणा और सामाजिक चेतना का अद्वितीय समन्वय मिलता है। कवि इसे राष्ट्र के उत्थान, समाज के संतुलन और गृहस्थ जीवन की पूर्णता का आधार मानते हैं।

बहु-विवाह :

द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्यसमाज का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। आर्यसमाज ने एक-पत्नी-व्रत को आदर्श मानते हुए बहु-विवाह का दृढ़ विरोध किया। 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि दयानन्द ने भी एक समय में एक ही विवाह को उचित ठहराया। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में एकनिष्ठ दाम्पत्य को श्रेष्ठ बताया। 'साकेत' में राम-सीता तथा लक्ष्मण-उर्मिला जैसे पात्र एकपत्नी-व्रत और पातिव्रत-धर्म के आदर्श रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। 'शंकर' शर्मा ने भी स्पष्ट कहा कि दाम्पत्य-सुख का मूल एक ही विवाह है। अत: द्विवेदी-युगीन काव्य में बहु-विवाह का विरोध और एक-पत्नी/एक-पति व्रत का समर्थन—आर्यसमाज की सुधारवादी प्रेरणा का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

अनमेल विवाह :

आर्यसमाज और द्विवेदी-युगीन काव्यधारा ने अनमेल विवाह (बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, या गुण-दृष्टि से असंगत विवाह) का स्पष्ट विरोध किया। उनका मत है कि विवाह केवल दो हृदयों के मेल का नाम है, अत: इसमें समान आयु, गुण और योग्यता आवश्यक हैं। अनमेल विवाह सामाजिक असंतुलन और विधवाओं की संख्या बढ़ाने का कारण बनता है।

कवियों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, 'शंकर' शर्मा, हरिऔध आदि ने व्यंग्य और मार्मिक चित्रण के माध्यम से इस कुरीति की निन्दा की। उनकी रचनाओं में वृद्ध और बालिकाओं के विवाह, कपूतों के विवाह, परिवारों के विनाश और सामाजिक हानि का उल्लेख है। इसके बदले कवियों ने उचित विवाह, कन्या की इच्छानुसार विवाह और समान गुणों के आधार पर मिलन करने की शिक्षा दी। अत: अनमेल विवाह को त्याज्य और सामाजिक हानिकारक माना गया, जबकि समान गुण, आयु और सहमति पर आधारित विवाह को आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया।

बाल-विवाह :

बाल-विवाह का उद्देश्य प्रारंभ में समाज और जाति की सुरक्षा माना जाता था, किन्तु इसके दुष्परिणाम अत्यधिक गंभीर रहे। कम आयु में विवाह होने से बालिकाएँ अशिक्षित, रोगी और विधवाएँ बन जाती हैं, जबकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक कष्ट सहना पड़ता है। इससे भविष्य की संतान भी शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर होती है।

आर्यसमाज और द्विवेदी-युगीन कवियों ने बाल-विवाह का कटु विरोध किया। उनका मानना था कि विवाह योग्य आयु कम से कम युवती के लिए 16 वर्ष और युवक के लिए 25 वर्ष होनी चाहिए। कवियों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, शंकर शर्मा आदि ने बाल-विवाह से उत्पन्न कष्ट, ब्रह्मचर्य की क्षति, विधवाओं की वृद्धि और पारिवारिक विनाश का मार्मिक चित्रण किया।

विधवा-विवाह :

विधवा-विवाह का अभाव समाज में विधवाओं की दुर्दशा, भ्रूणहत्या और अन्य सामाजिक कुरीतियों का कारण बनता है। वेद, स्मृति और आर्यसमाज इसे वैध और लाभकारी मानते हैं। आर्यसमाज ने विधवाओं के उद्धार और उनके पुनर्विवाह का प्रचार किया।

द्विवेदी-युगीन कवियों जैसे श्रीधर पाठक, शंकर शर्मा, आचार्य द्विवेदी, लोचनप्रसाद आदि ने विधवाओं की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया और उनके पुनर्विवाह का प्रबल समर्थन किया। उनका मत है कि विधवाएँ यदि स्वयं ब्रह्मचारिणी रहना चाहें, तो रह सकती हैं, लेकिन उन्हें बलपूर्वक ऐसा करने के लिए बाध्य करना अनुचित है।

नियोग :

आर्यसमाज नियोग को कुलक्षय और आपद्धर्म से संबंधित सामाजिक आवश्यकता के रूप में मानता है। यह प्रथा मुख्यत: अक्षतयोनि विधवाओं और क्षतयोनि विधवाओं के लिए अपनाई जाती है ताकि उत्तम संतान उत्पन्न हो और व्यभिचार का निवारण हो सके। नियत समय और नियमों के अनुसार केवल सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से ही इसे अनुमति दी जाती है।

महर्षि दयानन्द ने इसे वेद-सम्मत व्यवस्था के रूप में पुन: प्रचलित किया। आलोचकों के बावजूद, वेदशास्त्र एवं आर्यसमाजी दृष्टिकोण के अनुसार नियोग में व्यभिचार का दोष नहीं माना जाता।

साहित्य में, विशेषकर आर्यसमाजी कवि 'शंकर' ने अपनी रचनाओं में नियोग की प्रथा के माध्यम से विधवाओं के दु:ख और गर्भपात न होने का वर्णन किया और इसे विधवाओं के उद्धार का साधन माना।

दहेज प्रथा :

दहेज प्रथा हिन्दू समाज में अत्यंत विकृत रूप ले चुकी है, जहाँ कन्याओं और उनके परिवारों को धन और संपत्ति के लिए बोझ समझा जाता है। यह प्रथा परिवारों और कन्याओं का जीवन नष्ट करती है और समाज की नैतिक एवं सामाजिक उन्नति में बाधक है।

आर्यसमाज इस प्रथा का घोर विरोध करता है। आलोच्य युग के कवियों जैसे गोपालशरण सिंह, मैथिलीशरण गुप्त, शंकर, पाण्डेय लोचनप्रसाद आदि ने दहेज की कुप्रथा का व्यंग्यात्मक और यथार्थ चित्रण किया। उन्होंने दिखाया कि दहेज के कारण कन्याएँ असह्य पीड़ा सहती हैं, आत्महत्या कर लेती हैं, और

परिवार सामाजिक संकट में पड़ जाता है। दहेज प्रथा सामाजिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टि से हानिकारक है। आर्यसमाज और समकालीन कवि इसे त्याज्य मानते हैं और विवाह को धन-लेनदेन से मुक्त करने का समर्थन करते हैं।

गुरु-महत्त्व :

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गुरु केवल अध्यापक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक, सत्यबोधक और कल्याणकारी होता है। उसके दर्शन और उपदेश से अज्ञान का अन्धकार मिटता है और शिष्य के जीवन में मार्गदर्शन और उन्नति आती है।

आर्यसमाज सद्गुरु को विशेष मान्यता देता है, चाहे वह सामान्य गुरु हो या महर्षि दयानन्द जैसे आदर्श गुरु। आलोच्य काल के कवियों ने गुरु-महत्त्व को रचनाओं में व्यक्त किया है। राम, वशिष्ठ, बुद्ध, शंकराचार्य, और स्वामी दयानन्द को आदर्श गुरु मानकर उनका गुणगान किया गया है। कवियों ने गुरु के प्रति श्रद्धा, भक्ति और उसके आदेशों का पालन करने का महत्त्व भी स्पष्ट किया। गुरु हृदय और जीवन के मार्गदर्शक हैं। उनका सम्मान, आदर और पालन व्यक्ति के नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य है।

अतिथि सत्कार :

भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार मानव का धर्म और श्रेष्ठ गुण माना गया है। अतिथि की सेवा, सम्मान और उसे उचित भोजन एवं सुविधा देना गृहस्थों का पावन कर्तव्य है। वेदों में अतिथि को देवों के समान आदर देने का विधान है। आलोच्य काल के कवियों ने अतिथि सत्कार के महत्त्व और फल का विस्तृत वर्णन किया है। राम-सीता, द्रौपदी और अन्य पात्रों द्वारा अतिथि सेवा की प्रेरणा दी गई है। कवियों ने अतिथि को माता-पिता और गुरुजनों के समान आदरणीय माना तथा उसकी सेवा से गृहस्थ और समाज दोनों गौरवान्वित होते हैं, इसे रचनाओं में उजागर किया है। अतिथि सत्कार न केवल सामाजिक कर्तव्य है, बल्कि इससे व्यक्ति और समाज की भलाई, सम्मान और पुण्य की वृद्धि होती है।

परोपकार :

भारतीय संस्कृति में परोपकार केवल अपने परिवार या जाति तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्राणिमात्र के कल्याण के लिए समर्पित रहना धर्म माना गया है। यह भावना 'सर्वे भवन्तु सुखिनः...' जैसे वेदान्त वचन में प्रतिपादित है। परोपकार में तन, मन और धन से दूसरों की सहायता करना, उनका दुःख दूर करना और सुख बढ़ाना शामिल है।

आलोच्य काल के कवियों ने परोपकार को जीवन का सर्वोच्च धर्म मानकर उसकी महिमा की है। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, शंकर, लोचनप्रसाद, रामचरित उपाध्याय, गोपालशरणसिंह, रूपनारायण पाण्डेय और अन्य कवियों ने रचनाओं में लोकहित, दूसरों के कल्याण और समाज-सेवा की प्रेरणा दी है। वे यह संदेश देते हैं कि लोकोपकारी व्यक्ति ही सच्चे अर्थ में पूज्य और प्रतिष्ठित होता है। अतः परोपकार का अभ्यास मानव जीवन का परम धर्म है। यह न केवल व्यक्तिगत पुण्य और सम्मान बढ़ाता है, बल्कि समाज और राष्ट्र की भलाई और स्थिरता का आधार भी है।

निष्कर्षतः आर्यसमाज और आलोच्य काल के कवियों ने समाज सुधार, नैतिक शिक्षा, नारी उद्धार, लोकहित और मानव कल्याण के लिए सक्रिय प्रयास किए। विधवा-विवाह और नियोग ने समाज में न्याय

और संतुलन स्थापित किया; दहेज-विरोध और अतिथि-सत्कार ने सामाजिक क्रियाओं को नैतिक रूप दिया; गुरु-महत्त्व और परोपकार ने व्यक्तियों के जीवन में उच्च आदर्श और मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रबल किया। इन सभी विचारों का मूल संदेश यह है कि मानव का उद्देश्य केवल अपने लिए सुख और लाभ नहीं, बल्कि समाज, जाति, राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए कार्य करना और दूसरों के हित में लीन रहना होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पद्य-प्रसून, हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय (दरभंगा), प्रथम संस्करण, 1982*
2. *अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रियप्रवास, हिन्दी-साहित्य कुटीर, बनारस, नवम् संस्करण, 2013 वि.*
3. *मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), प्रथम संस्करण, 2014 वि.*
4. *दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, दशम संस्करण, 2015 वि.*
5. *अनुराग-रत्न, पं. यज्ञदत्त शर्मा, प्रभाकर प्रेस, आगरा, द्वितीय संस्करण,*
6. *शंकर-सरोज, आर्यसमाज बरौठा, हरदुआगंज (अलीगढ़), चतुर्थ संस्करण, 1987*
7. *हरिशंकर शर्मा, शंकर-सर्वस्व, गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, प्रथम संस्करण, 2008 वि.*
8. *सियारामशरण गुप्त, दूर्वादल, साहित्य सदन, चिरांगांव-झाँसी, 2004 वि.*
9. *डॉ. मुकुन्ददेव शर्मा, हरिऔध: जीवन और कृतित्व, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1961 ई.*
10. *डॉ. कमलकान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य, हिन्दी परिषद, सागर विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1960*
11. *अज्ञात कृतृंक, पुष्पांजलि, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली संस्करण 1951 ई.*
12. *पं. नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', अनुराग-रत्न : पं. यज्ञदत्त शर्मा, प्रभाकर प्रेस, द्वितीय संस्करण, आगरा*
13. *डॉ. लक्ष्मीनारायण गुप्त , हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन, लखनऊ विश्वविद्याल प्रकाशन, लखनऊ प्रथम संस्करण, 2018 वि.*
14. *डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1861 ई.*
15. *हरिशंकर शर्मा, भजन-भास्कर, तृतीय संस्करण, गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा*
16. *रामधारी सिंह दिनकर, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, उदयाच प्रकाशन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1965 ई.*
17. *आर्य-सेवक, जून 1914*
18. *सरस्वती, नवम्बर 1912, जनवरी 1916, जनवरी 1915, सितम्बर 1916*
19. *भक्तराम शर्मा, द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1973*